सार्वजनिक बहस–2

Tata Institute of Social Sciences
Patna Centre

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध और बीसवीं सदी के पूर्वार्ध के इतिहास का अध्ययन क्यों जरूरी है?

रणबीर समाद्दार

जुलाई 2017

Tata Institute of Social Sciences
Patna Centre

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध और बीसवीं सदी के पूर्वार्ध के इतिहास का अध्ययन क्यों जरूरी है ?

रणबीर समाद्दार

जुलाई 2017

सार्वजनिक बहस–2

प्रकाशक :
टाटा इंस्ट्टियुट ऑफ सोशल साइंसेज, पटना केन्द्र
तक्षशिला कैम्पस
डीपीएस सीनियर विंग
चाँदमारी गांव, दानापुर कैन्टोन्मेंट
पटना – 801502 (बिहार) भारत
वेबसाइट : www.tiss.edu
इ–मेल : patnacentre@tiss.edu

यह प्रकाशन "पलायन" पर आयोजित एक लेक्चर सीरिज का हिस्सा है। हम लेक्चर सीरिज और प्रकाशन में सहयोग के लिए तक्षशिला एजुकेशनल सोसाइटी के प्रति आभारी हैं।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध और बीसवीं सदी के पूर्वार्ध के इतिहास का अध्ययन क्यों जरूरी है?

रणबीर समाद्दार[1]

राष्ट्र केन्द्रित और प्रवास केन्द्रित इतिहास

पंद्रह साल पहले जब मेरी किताब द मार्जिनल नेशन (1999) प्रकाशित हुई थी, तो मैंने यों ही सहज बोध से एक बात कही थी कि प्रवास को लेकर होने वाले अध्ययनों की रोशनी में राष्ट्रीय इतिहासों में सुधार करने की जरूरत पड़ेगी. लेकिन तब मैंने पर्याप्त रूप से विश्लेषण करके यह बात नहीं कही थी. करीब–करीब उसी समय प्रवासियों (जो एक प्रक्रिया के तौर पर प्रवास से अलग है) पर किए जाने वाले अध्ययनों ने यह दिखाना शुरू कर दिया था कि आज हमारी राष्ट्रवादी दुनिया असुरक्षा के जिस ताने–बाने में बुनी जा रही है, उस ताने–बाने में प्रवासी लोग एक असामान्य छवि के रूप में उभर रहे हैं. हमारे वक्त में जिस प्रकार से प्रवासी उथल–पुथल लाने वाले एक तत्व के रूप में उभरे हैं उसके प्रभाव को पूरी तरह समझने के लिए हमें प्रवासन के ऐतिहासिक सवाल और उसे नियंत्रित करने के तरीकों की अहमियत को समझना होगा. यह समझना भी अहम है कि आधुनिक साम्राज्यी–राष्ट्रीय दुनिया में अस्थिर निवास वाले व्यक्तियों के निजी अनुभव और फैसले (सब्जेक्टीविटी) कैसी भूमिका निभाते हैं. इसके लिए शोध की दो धाराओं के महत्त्व को समझना जरूरी है.

पहला, इतिहास लेखन की किसी भी दूसरी धारा के मुकाबले श्रम इतिहासकारों ने उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में और बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में प्रवास की राजनीतिक अहमियत को पहचानने की ज्यादा कोशिश की है. स्टीफंस कास्ल्स और गोड्युला कॉजैक के साझे काम – इमिग्रेंट वर्कर्स एंड क्लास स्ट्रक्चर इन वेस्टर्न यूरोप (1973) के बाद से श्रम के पलायन पर कुछ बेहतरीन अध्ययन सामने आए हैं और वे इसकी तरफ इशारा करते हैं कि राष्ट्र रूप का एक अलग इतिहास कैसे लिखा जा सकता है. ऐसे इतिहास से हमें आबादियों को अपने साथ शामिल करने (समावेशन) और उन्हें अलग–थलग बनाए रखने (बहिष्करण) के इतिहासों के साथ–साथ नागरिकता के सफरनामे के इतिहासों (जिसमें वह चीज भी शामिल है जिसे मार्शल ने "सामाजिक नागरिकता" का नाम दिया है) के बारे में जानकारी मिलेगी. दूसरी बात, श्रम के सामान्य इतिहास लेखन के साथ–साथ हमारे पास अनुबंधित (इंडेन्चर्ड) श्रम

1 प्रो. रणबीर समाद्दार कलकत्ता रिसर्च ग्रुप में माइग्रेशन और फोर्सड माइग्रेशन स्टडीज में विशिष्ठ चेयर के पद पर हैं. इमेलः ranabir@mcrg.org

मूल अंग्रेजी से अनुवादः श्री रेयाजुल हक

के निर्यात और बागान अर्थव्यवस्था की वृद्धि के विशेष अध्ययन भी हैं जो पिछली दो सदियों में राष्ट्र–रूप के इतिहास को लिखने के एक अलग ही तरीके के बारे में संकेत करते हैं, जहां राष्ट्रवाद से परे जाने वाले अनुबंधित श्रम की कहानी एक अलग ही दुनिया बनाती है. ये दो तथ्य राष्ट्र रूप के इतिहास और अलग तरीके से स्वरूप ले रहे श्रम रूप के इतिहास के बीच स्थायी फर्क को ही जाहिर करते हैं.

असल में कल्याणकारी राज्य और योजनाओं के विभिन्न पहलुओं पर हुए एक नए किस्म के ऐतिहासिक अध्ययन, जो कई मामलों में शासन की फूकोवादी अवधारणा से प्रेरित हैं, आधुनिक शासन की एक अलग ही समझदारी के संकेत देते हैं जहां राष्ट्र का अध्ययन करना हमारी राजनीतिक समझदारी के केंद्र में नहीं है. इसकी जगह हमारे पास गतिशील एवं अनियंत्रित आबादी के प्रवाह को शासित करने का इतिहास है, जो कमोबेश अभी तक लिखा नहीं गया है और जिसकी कहीं बड़ी अहमियत है. ये अध्ययन, जिनमें से कुछ का हवाला मैं इस लेख के दौरान दूंगा, टकरावों और संघर्षों, हताशा भरे जीवन को बचाने और नए नेटवर्क (संपर्कों और संबंधों) के विकास और पुराने नेटवर्क के व्यापक विस्तार और दूसरे इलाकों में ले जाकर उनकी जड़ों को रोपे जाने का अहसास कराते हैं. उन्नीसवीं सदी में भूख; अस्थिर गतिविधियों; कुलियों के परिवहन; अकालों के विस्तार; बच्चों और युवा लड़कियों के जल मार्ग से परिवहन; यौन, श्रम एवं इंसानी अंगों के अवैध व्यापार आदि के अध्ययन; तथा इन भारी बदनामियों से निबटने के लिए बने कल्याणकारी कानूनों के अध्ययन हमें बताते हैं कि असल में किस तरह हम साम्राज्य की स्थितियों के तहत आज के अपने वक्त में विषयों के निर्माण की मौजूदा प्रक्रिया तक पहुंचे हैं. निश्चित रूप से यह राष्ट्र–केंद्रित इतिहासों की परंपरा से अलग है.

आप करार से बंधे हुए कुलियों (गिरमिटिया मजदूरों) या बच्चों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाए जाने (परिवहन) के मामले को लीजिए. हमें कुलियों के श्रम के परिवहन के बारे में कुछ न कुछ पता है; लेकिन हमें इसके बारे में बहुत कम जानकारी है कि बच्चों को समुद्र या रेगिस्तानों के पार श्रम शक्ति के रूप में किस तरह भेजा जाता था. अपरूटेडः द शिपमेंट ऑफ पुअर चिल्ड्रन टू कनाडा, 1867–1917 (2010) नाम की एक किताब में बाल श्रम के परिवहन के इतिहासकार रॉय पार्कर हमें उन्नीसवीं सदी के दूसरे आधे हिस्से और बीसवीं सदी के पहले कुछ दशकों में सैकड़ों लड़के–लड़कियों के इंग्लैंड से कनाडा के निर्यात की ब्योरेवार दास्तान सुनाते हैं, जिनको कनाडा में काम करना था, जिन्हें मार–पीट भुगतनी थी, जिनके साथ यौन दुर्व्यवहार हुए और जिनसे गुलामों की तरह मेहनत कराई गई. यह सब कनाडा के निर्माण के लिए और गरीब, बदहाल बच्चों से इंग्लैंड द्वारा छुटकारा पाने के लिए किया गया. मोटे तौर पर यह अमेरिकी गृह युद्ध के फौरन बाद का वह समय था जब सेंट्रल पैसिफिक रेलवे लाइन बनाने के लिए चीनी मजदूरों का अमेरिका में आयात किया गया. लोग सिएरा नेवादा (1867)

की ऊंचाइयों पर बर्फ और लगभग नामौजूद हवा के बीच बनाई गई सुरंगों के रूप में इंजीनियरिंग की आश्चर्यजनक और विशालकाय उपलब्धि की बातें करते हैं जिस पर अब फिल्में भी बनी हैं, संग्रहालय हैं और रेलवे लाइन के निर्माण पर और उसमें शामिल कंपनियों और कारोबारियों के उद्यमों पर अभिलेखागार भी हैं (http://www.pbs.org/wgbh/americanexperience/films/tcrr/), लेकिन श्रम के प्रवास के ब्योरों के बारे में, श्रम के रूपों और श्रम की स्थितियों आदि के बारे में कोई बात नहीं करता. हमें अमेरिका में रेलवे निर्माण में आयरिश और चीनी श्रम पर लिखी गई बहुत थोड़ी सी किताबों से जो जानकारी हासिल होती है, बस वही इसका अपवाद है. कैंटन प्रांत से चीनी किसान 1850 में कैलीफॉर्निया के तट पर पहुंचने लगे थे. शुरू में उन्होंने खदानों में पांच साल तक काम किया, जिसके बाद उन्होंने मजदूरों, घरेलू नौकरों या मछुआरों का काम खोजा या फिर इसे कबूल कर लिया. उन्हें गहरे पूर्वाग्रहों और पाबंदियों को बढ़ाते जाने वाले कानूनों का सामना करना पड़ा जिन्होंने उनके काम के मौकों को सीमित कर दिया. कैलीफॉर्निया के गवर्नर लेलैंड स्टैनफोर्ड ने 1862 में इस पद पर आने के बाद अपने भाषण में "एशिया के कूड़ा–करकट" से राज्य को बचाने का वादा किया. हालांकि 1865 में ही सेंट्रल पैसिफिक रेलवे कंपनी ने हमेशा बनी रहने वाली मजदूरों की कमी की वजह से चीनी मजदूरों की भर्ती शुरू कर दी थी. शुरुआती मजदूरों में से ज्यादातर आयरलैंड के प्रवासी लोग थे. रेल की पटरियां बिछाना बहुत मुश्किल काम था और प्रबंधन बहुत अव्यवस्थित था, जिससे लोगों के काम छोड़ने की दर काफी ऊंची थी. एक आधिकारिक स्रोत बताता है, "रेलरोड ने बर्फ की वजह से अनगिनत लोग गवां दिए. बर्फीले तूफान से एक बार में दर्जनों लोग खत्म हो जाते." कैंप 4 के नाम से जाने जानेवाले स्ट्रॉन्ग्स कैन्यन पर बर्फ का एक बड़ा सा हिस्सा फिसल कर धंस गया. सुरंग 11 और 12 के लिए दो चीनी गैंग और कलवर्ट कामगारों का एक गैंग इस कैंप में था. बर्फ के स्खलन ने इन सबकी जान ले ली और कलवर्ट कामगारों का एक सदस्य अगले बसंत में ही जाकर मिल पाया. यहां तक कि जब सुरंगों का काम पूरा हो गया, तब भी उनका रख–रखाव एक बड़ा काम था. 1868 के बसंत में ऊंचाई पर स्थित ज्यादातर सुरंगों का रास्ता बर्फ से पूरी तरह बंद हो गया था. ऐसे में जमी हुई बर्फ को बम धमाके से उड़ा कर उसे ढीला करना था और इसके बाद फावड़े से उसे पूरी तरह हटाया जाना था. वेबसाइट कहती है, "जब बर्फ से लोगों की जान बच जाती, तो काम से उनकी जान चली जाती थी." (http://www.pbs.org/wgbh/americanexperience/features/general&article/tcrr&tunnels/)

इसके साथ–साथ हमें यह याद रखना है कि यह सब कुछ देशी (नेटिव) अमेरिकन लोगों के व्यापक कत्लेआम के जरिए हासिल किया गया था ताकि रेलवे के निर्माण के लिए कारोबारी लोग जमीन पर कब्जा कर सकें. फिर कब्जा करने के बाद 1876 में अमेरिका ने फिलाडेल्फिया में शताब्दी प्रदर्शनी

(सेंटेन्नियल एक्सपोजीशन) में अपनी ताकत का जश्न मनाया जो आंशिक रूप से रेलवे बिछाने का काम पूरा होने से हासिल हुआ था. वहां प्रदर्शित की हुई वस्तुओं में कोई भी "इंडियन राष्ट्र की नायाब रईसी", और रेलवे के निर्माण की बहादुरी भरी उपलब्धियों को देख सकता था. एक्पोजीशन में बुलाए गए अमेरिकन इंडियन प्रतिनिधियों ने पाया कि मेले में आने वालों के लिए वे लोग कौतूहल का विषय हैं. "संघर्ष खत्म हो गया था, और देशी अमेरिकी आदिवासी हार गए थे, और इसके परिणामस्वरूप पश्चिमी दुनिया हमेशा के लिए बदल गई थी." (http://www.pbs.org/wgbh/americanexperience/features/general&article/tcrr&tribes/)

हमें चीनी मजदूरों के प्रतिरोध के बारे में भी बहुत कम जानकारी है. बस हमें 1876 की उस मशहूर हड़ताल के बारे में ही पता है जब 25 जून को चीनी मजदूर पूर्वी सिएरा ढाल पर दो मील तक की ग्रेडिंग का काम छोड़ कर अपने शिविर में लौट आए थे. वे अपनी मासिक मजदूरी 35 डॉलर की जगह 40 डॉलर किए जाने और काम के घंटे घटाए जाने की मांग कर रहे थे. सिएरा में काम का दिन तड़के सवेरे से सांझ ढलने तक चलता था; जबकि चीनी मजदूर रोज 10 घंटे से ज्यादा काम नहीं करना चाहते थे. वे मुश्किल और खतरनाक सुरंगों में काम की पालियों को छोटा किए जाने की मांग भी कर रहे थे. कंपनी के मालिकों ने इसके जवाब में उस ऊंचाई पर खाने की आपूर्ति रोक दी और गोरे दबंगों को तैनात कर दिया (http://www.pbs.org/wgbh/americanexperience/features/general&article/tcrr&cprr/)- एकबार फिर हमारे पास इसके निश्चित आंकड़े नहीं हैं कि हड़ताल के कुचल दिए जाने तक कितने मजदूरों की मौत हुई. असल में वैश्विक श्रम आप्रवासन के इस दौर पर ज्यादा अध्ययन नहीं है और अमेरिका में रेलवे के निर्माण पर जो किताबें हैं वे ज्यादातर जश्न मनाने वाले नजरिए से लिखी गई हैं (मिसाल के लिए, एंपायर एक्सप्रेसः बिल्डिंग द फर्स्ट ट्रांस्कॉन्टीनेंटल रेलरोड, डेविड हावर्ड, न्यूयॉर्क, पेंगुइन बुक्स, 2000 और नथिंग लाइक इट इन द वर्ल्डः द मेन हू बिल्ट द ट्रांस्कॉन्टीनेंटल रेलरोड 1863–1869, स्टीफन ई. अंब्रोस, न्यूयॉर्क, साइमन एंड शुसर, 2001). वैश्वीकरण के दौर में पूंजी और श्रम दोनों का ही वैश्वीकरण हो रहा था. यह कहना मुश्किल है कि इसमें से कौन पहले हुआ और कौन बाद में. ज्यादा मुमकिन यही है कि ये दोनों ही परिघटनाएं एक दूसरे के साथ जुड़ी हुई थीं.

इसी तरह ऑस्ट्रेलिया में खनन के काम के लिए व्यापक आयात के दौरान उन्नीसवीं सदी के आखिरी आधे हिस्से और खास कर बीसवीं सदी के पहले आधे हिस्से में लड़कियों, लड़कों और अकेली औरतों को ले जाया जाता था और निर्मम एडवर्डियन घरों (मिसाल के लिए, एडेलएड में उस इमारत को अब माइग्रेशन म्यूजियम कहा जाता है) में रखा जाता था जहां खैराती संस्थाओं और नगर परिषदों द्वारा दीवारों पर यह लिखा हुआ होता था, "तुम, जिसके पास इस धरती

पर कहीं कोई जगह नहीं है, इस घर में दाखिल हो जाओ – बाहर की दुनिया की ओर कभी भी मुड़ कर नहीं देखना, बल्कि इसे अपना घर समझना". दस्तावेजों और लिखित सामग्री का एक गजब का संकलन मेरी गेयर ने तैयार किया, जिसे दक्षिण ऑस्ट्रेलिया में महिलाओं के आम मताधिकार के सौ साल (1894–1994) पूरे होने के मौके पर माइग्रेशन म्यूजियम ने 1994 में प्रकाशित किया था. बिहाइंड द वॉल – द वुमेन ऑफ डेस्टीट्युट असाइलम, एडेलएड, 1852–1918 नाम की यह किताब हमें दीवारों के पीछे के बदहाल प्रवासी जीवन के बारे में बताती है. इसके थोड़े पहले कुछ और अध्ययन भी किए गए थे जैसे कि अपरूटेड चिल्ड्रेन – अर्ली लाइफ ऑफ माइग्रेंट फार्म वर्कर (रॉबर्ट कोल और सीनेटर मार्क हैटफील्ड, 1971). उन्नीसवीं सदी के दूसरे आधे हिस्से में भोजन और काम की तलाश में हंगर मार्च शुरू हुए और ये नई और पुरानी दुनियाओं, तथा औपनिवेशिक देशों और उपनिवेशों में बीसवीं सदी में भी जारी रहे. इस व्यापक ऐतिहासिक बेदखली के हिस्से के रूप में कुली मजदूरों के निर्यात को देखना अहम है (यहां आंतरिक और अंतर्राष्ट्रीय प्रवास के बीच एक बारीक रेखा है), जिसके ज्यादातर हिस्से पर अभी भी पर्दा पड़ा हुआ है. कुलीज, कैपिटल एंड कोलोनियलिज्म – स्टडीज इन इंडियन लेबर हिस्ट्री (संपा. राना पी. बहल व मार्सल वान डर लिंडेन, 2007) जैसे काम या फिर यान ब्रेमन का पहले का एक बेहतरीन काम, टेमिंग द कुलीज बीस्ट – प्लांटेशन सोसायटी एंड द कोलोनियल ऑर्डर इन साउथईस्ट एशिया (1989) उस व्यापक रिश्ते के संकेत देते हैं जिनकी तरफ हमें सलीके और लगन से आगे बढ़ना होगा ताकि आज जो कुछ भी हो रहा है उसकी समझदारी विकसित की जा सके. एक दूसरी मिसाल हाल ही में सामने आई है, जिसमें बड़ी मेहनत से अल नीनो प्रभावों के संदर्भ में उन्नीसवीं सदी के अकालों का ब्योरा नए सिरे से तैयार किया गया है. हम माइक डेविस की लेट विक्टोरियन होलोकॉस्ट्स एंड द मेकिंग ऑफ द थर्ड वर्ल्ड (2002) की बात कर रहे हैं, जो एक बार फिर से हमारे समय के निर्माण प्रक्रिया की एक अलग ही तस्वीर पेश करती है, जिसमें सूखा, बाढ़, भूख और उभरते हुए वैश्विक खाद्य बाजार से बड़ी संख्या में खेतिहर समुदायों की जबरन बेदखली से पैदा हुए अकालों और व्यापक आबादी की गतिविधियों ने इस निर्माण पर अपनी छाप छोड़ी है. और, इन सबसे ऊपर, धरती पर विभिन्न राष्ट्रों द्वारा बड़ी सेनाओं के निर्माण, जिन्हें दूर–दराज की जगहों पर लड़ने के लिए तैयार किया गया और जिसके लिए पुरुषों की व्यापक संख्या में भर्ती की गई, के इतिहास को भी जोड़ लीजिए. मुल्क दर मुल्क, और दुनिया के पैमाने पर भी, आपको यही इतिहास मिलेगा. यह भी सच है कि एक दूसरी प्रक्रिया भी इस परिघटना के साथ चल रही थी. यहां मैं आबादी के प्रवाह पर नियंत्रण करने वाली बुनियादी तकनीक के विकास की उस प्रक्रिया का जिक्र कर रहा हूं जो हर मामले में आबादी की एक सही बनावट को हासिल करने की कोशिश कर रही थी, जिसे अब उचित सम्मिश्रण ('द राइट मिक्स') कहा जाता है. इसके परिणामस्वरूप बंटवारे हुए और नई सीमाएं खींची गईं.

हमें यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि यह सब गुलामी प्रथा के खात्मे के बाद हुआ. गुलामी के खात्मे के बाद का काल श्रम की प्रक्रियाओं में अनेक बदलाव वाले तौर–तरीकों से होकर गुजरा – गुलामी, करार से बंधे हुए मजदूर, ठेका मजदूर और स्वतंत्र मजदूर. ये तरीके इतिहास में कभी भी एक शुद्ध श्रेणी के रूप में सामने नहीं आए, क्योंकि श्रमिकों की ज्यादातर उपलब्धता उनकी गतिशीलता पर निर्भर करती थी और इस तरह श्रमिक गतिशील (मोबाइल) बन रहे थे. असल में सच्चाई ये है कि मुख्यतः श्रम को गतिशील बनाने की शर्त पर ही वैश्वीकरण आगे बढ़ा. यह बात हमेशा ही वैश्वीकरण के आधिकारिक इतिहास के नीचे अंधेरे में दबी हुई रहेगी. यही इसका (वैश्वीकरण का) सबआल्टर्न या आदिम पहलू है. इसमें हमेशा ही पूंजी जुटाने का आदिम तरीका भी शामिल होगा, जैसा कि मार्क्स ने इसके बारे में समझाया था. इसलिए खनन, रेलवे का निर्माण, और बागान अर्थव्यवस्था गतिशील श्रम के मुख्य ठौर के रूप में सामने आते हैं – ऐसा इसलिए है कि इन क्षेत्रों में लगने वाली श्रम प्रक्रिया की खास प्रकृति भी यही है. उनमें हमारे दौर की झलक मिलती है, जब पूरी दुनिया में घरेलू और देखभाल (केयर) की पूरी अर्थव्यवस्था गतिशील श्रम की भर्तियों पर निर्भर है. आज की तरह ही तब भी पूंजीवादी उत्पादन में गतिशील श्रम की अहम भूमिका थी. राष्ट्र को केंद्र में रख कर लिखे गए इतिहासों से हमें आबादी के बनने की इस व्यापक प्रक्रिया का कोई सुराग नहीं मिलता.

मानवतावाद, शासन संबंधी नीतियां, और प्रवास के असामान्य आंकड़े

इस सबके जरिए दो मुद्दे उभर कर सामने आए हैं जो आधुनिक दौर की निशानियां हैं – एक तरफ मिली–जुली, उलझी हुई, आबादी का प्रवाह है जिसके प्रति शासन की प्रतिक्रिया उग्र होती है, और दूसरी तरफ मानवतावादी तौर–तरीकों, कार्रवाइयों, संस्थानों और उसूलों के स्तर पर तेजी से होने वाली नई खोजें हैं. अचानक ही सरकारों ने खोज लिया है कि लोग अपनी जगहों से दूसरी जगहों पर क्यों जाते हैंः सिर्फ हिंसा, हिंसा के खतरे, यातना या भेदभाव से नहीं (जो अब रोजमर्रा की वजहें हो गई हैं), बल्कि वे कुदरती आपदाओं, इंसानी वजहों से पड़ने वाले अकालों और बाढ़, जलवायु में होने वाले बदलाव, विकास के एजेंडे, संसाधनों के संकट, पर्यावरणीय तबाहियों और इसी तरह की वजहों से अपनी जगहों को छोड़ते हैं. मानवतावादी प्रतिक्रिया का सिलसिला भी इसी के मुताबिक विकसित हुआ है. सरकारें कहती हैं कि उन्हें न सिर्फ आपात स्थितियों के लिए तैयार होना है, बल्कि "जटिल आपात स्थितियों" के लिए भी तैयार होना है – यह आपात स्थितियों को अंजाम देने वाली एक ऐसी स्थिति है जो कारकों और तत्वों के एक जटिल मेल का संकेत देती है. हमारे समय के ये दो मुद्दे किस तरह करीब आए हैं, इसे समझने के लिए हमें मुड़कर उन्नीसवीं सदी के दूसरे आधे हिस्से और बीसवीं सदी के शुरुआती हिस्से में आबादी की गतिविधियों के इतिहास पर नजर डालनी होगी. इसी काल में नियंत्रण की बुनियादी व्यवस्था कायम की गई थी, जैसे

कि पासपोर्ट और वीजा तंत्र लागू किया गया (इसका शानदार ब्योरा जॉन टॉर्पे ने जुटाया है; इसके अलावा, व्यापक इतिहास के लिए मार्टिन लॉयड को भी देखें), विदेशियों का दस्तावेजीकरण हुआ, श्रम बाजार के प्रबंधन के उपकरण विकसित किए गए ताकि प्रवासी श्रम को पूंजीवादी बाजार के इस्तेमाल में लाया जा सके और घरेलू श्रम पर नियंत्रण रखा जा सके, और इस तरह एक विस्तृत निगरानी व्यवस्था विकसित की गई. इसमें कानूनों ने अहम भूमिका निभाई लेकिन कानूनों से भी ज्यादा नए प्रशासनिक व्यवहार महत्त्वपूर्ण साबित हुए. अलग–अलग तरह के सामाजिक बहिष्करण पर अमल करने वाले आधुनिक लोकतंत्रों की खासियतें इसी दौर में विकसित हुईं. इन्हीं तरीकों से अस्थिरता लाने वाले तत्वों को दुरुस्त करने के बाद ये समाज, जहां श्रम विभाजन की एक प्रथा पहले से चली आ रही थी, फिर से अपना संतुलन कायम करना चाहते थे. हर असामान्य तत्व पर नियंत्रण के द्वारा सामान्यता को बहाल किया जाना था और ये असामान्य तत्व आम तौर पर प्रवासी ही होते थे. इसी काल में प्रवासियों को शासित करना, समस्या के लक्षणों को दूर करने का कार्यभार बन गया. असामान्यता का विमर्श वास्तविक जीवन की घटनाओं और प्रसंगों के जरिए खड़ा किया गया. यहां मैं एक घटना का जिक्र करना चाहता हूं, जिसे फ्रांस में आप्रवासन के एक इतिहासकार ने बड़ी मेहनत से दर्ज किया है और दिखाया है कि कैसे पेरिस की घटनाओं ने प्रवासी की छवि को एक असामान्य के रूप में गढ़ा.

> 1923 के आखिरी दिनों में प्रगतिशील राजनेताओं की हिचक दूर हो गई. सात नवंबर को शाम 4.30 बजे अल्जीरिया का एक बेरोजगार, बेघर कबायल समुदाय का आदमी 15वें प्रांत में रू फॉन्डरी के 43 नंबर पर एक किराने की दुकान में दाखिल हुआ. खेमिली मोहामेद सुलिमान ने दुकानदार की बीवी को पकड़ लिया – पेरिस में जन्मी तीस साल की उस औरत का नाम जेन बिया था – और उसे भीड़ भरी सड़क पर घसीट कर ले आया, जहां उसने उसे जमीन पर पटक दिया. कुछ समय पहले चुराई गई एक बड़ी सी सब्जी काटने वाली छुरी को लहराते हुए वह उसके ऊपर झुका, उसका दायां गाल काट डाला और उसकी बाईं कार्टोइड रग को काटते हुए उसका गला रेत डाला. खून में सराबोर वह लुई फॉजेरे की ओर मुड़ा जो अपने आठ साल के रोते हुए पोते एमिली को चुप करा रही थी, जो स्कूल से घर आया था. सुलिमान ने उसे चाकू से गोद दिया. वो गिर पड़ी और मौके पर ही मर गई और इससे एक होशियार पड़ोसी को नन्हे एमिली को बचाने की मोहलत मिल गई जिसने अपने ग्राउंड फ्लोर की खिड़की से उसे खींच कर बचा लिया. सुलिमान सड़क की दूसरी तरफ दौड़ा और उसने दो और लोगों को काटाः एक नौजवान मां थी जो अपने बच्चे को लिए हुए जमीन पर गिर पड़ी, और दूसरा रूमानिया का एक बत्तीस साल का जूतासाज था. आखिरकार जब सुलिमान स्कूली बच्चों के एक समूह को डराते हुए खड़ा था, तो एक कंस्ट्रक्शन मजदूर ने इस

हंगामे में दखल दी और उसने जमीन पर बिछाए जाने वाले पत्थर उसकी ओर फेंके जिससे उस पागल का ध्यान भटक गया. वह मजदूर तब तक ऐसा करता रहा जब तक साइकिल पर दो पुलिस अधिकारियों ने आकर सुलिमान को गोली नहीं मार दी. इस खूनखराबे के खत्म होने तक दो औरतें मर चुकी थीं और दो को इलाज के लिए पास के अस्पताल ले जाया गया था. उस अल्जीरियाई को भी अस्पताल ले जाया गया और उसके हाथ और पेट में लगी गोलियों का इलाज किया गया.

दोहरा कत्लेआम अखबारों की सुर्खियां बना रहा और इसने लोगों में एक खलबली मचा दी. हत्याओं के कुछ समय बाद, बिगड़ी हुई एक भीड़ ने अपने सामने पड़ गए एक अनजान अल्जीरियाई को पीट–पीट कर मारने की कोशिश की. यह मांग करते हुए याचिकाएं बांटी गईं कि मुहल्ले से "अवांछित" तत्वों को "निकाल बाहर" किया जाए. लंबे–लंबे लेखों में युवा बिया दम्पती की जिंदगियों की कहानियां बताई गईं. हाल ही में शादी करने वाला और अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए बड़ी जद्दोजहद कर रहा यह दम्पती एक साल पहले शहर के बाहरी हिस्से से विविधता भरी आबादी वाले ग्रीने मुहल्ले में चला आया था. किराने की दुकान चलाने वाले पति कैमिली बिया ने पास के एक शराबखाने में भी एक दूसरा काम शुरू किया था ताकि कुछ अतिरिक्त पैसे कमा सके. रिपोर्टरों ने ऐसे गवाहों को खोज निकाला जिन्होंने दावा किया कि सुलिमान ने कैमिली बिया की नामौजूदगी का फायदा उठाते हुए उसकी बीवी को लुभाया, वो उसके प्रति अपने प्यार को जाहिर करने के लिए अक्सर ही दुकान में आता रहता. अखबारों के मुताबिक जेन बिया सुलिमान से खुले दिल से पेश आती, कई बार उसे अपनी टेबल पर बचा हुआ सामान भी दे दिया करती, लेकिन वह हमेशा ही उसकी कोशिशों को नकारती थी.

"प्यारे से फ्रांस" को तबाह कर रहे घुसपैठिए, कामुक औपनिवेशिक आदमी की कहानी इससे ज्यादा रूढ़ नहीं हो सकता थी. पूरी कहानी इतनी बढ़ा–चढ़ा कर बताई गई लगती है कि यह सच नहीं हो सकती. इसमें शक नहीं कि प्रेस ने कुछ ब्योरों में गड़बड़ी की है और फिर फूहड़ पूर्वाग्रहों ने कई लेखों को तोड़–मरोड़ दिया है. हालांकि लालसा में डूबे संपादकों पर इसका इल्जाम नहीं लगाया जा सकता कि उन्होंने इस पूरे प्रसंग को अपने मन से गढ़ दिया होगा, क्योंकि इस कहानी का ज्यादातर हिस्सा कभी भी सार्वजनिक नहीं किया गया. प्रांतीय रिपोर्ट में एक औरत की गवाही शामिल है जिसने पुलिस को बताया कि वो कुछ दिन पहले बिया दम्पती की दुकान में मौजूद थी जब सुलिमान वहां आया और उसने गाली–गलौज की नदी ही बहा दी. इसके अलावा, इमारत के दरबानों का बयान छपी हुई खबरों से मेल खाता है कि सुलिमान पिछले छह महीनों से श्रीमती बिया के पीछे पड़ा हुआ था और सड़क पर आवारागर्दी किया करता था और दुकान के आसपास मंडराता रहता

था. जब पुलिस ने सुलिमान से पूछा कि इस खौफनाक अपराध की वजह क्या थी, तो उसने सादगी से कहाः एकतरफा प्यार. एक रिपोर्टर ने सुलिमान को यह कहते हुए उद्धृत कियाः

> "श्रीमती बिया के लिए मेरे प्यार ने मेरी जिंदगी बदल कर रख दी थी. मैं न कुछ काम कर पाता था, न खा पाता था और न ही सो पाता था; उनके बगैर मेरा वजूद नामुमकिन हो गया था. मैंने उन्हें बार–बार इसके बारे में बताया, लेकिन हर बार वो ठहाके लगाने लगतीं और मुझे बाहर निकाल देतीं. कल, मैं फिर से उनसे यह फरियाद करने गया था कि वे मेरे पास चली आएं: उन्होंने बेरहमी से मुझे ठुकरा दिया. इसलिए मैंने उन पर हमला किया."

जेन बिया के लिए हत्यारे की भावनाओं की सच्ची प्रकृति जो भी हो, लेकिन एक अल्जीरियाई मर्द द्वारा दो फ्रांसीसी औरतों की हत्या और दो को जख्मी कर देने की खबर ने लोगों को बहुत नाराज कर दिया और अधिकारियों की तरफ से बड़ी भारी जवाबी कार्रवाई को प्रेरित किया.

फॉन्डरी की हत्याएं अखबारों की सुर्खियों में छाई हुई थीं, जब मोरक्को के बागी नेता अब्द एल–करीम ने रिफ युद्ध में स्पेनी फौज पर हैरतअंगेज हमले करते हुए उन्हें नुकसान पहुंचाया, जिसके नतीजे में भारी उथल–पुथल मची और स्पेन में जनरल मिगेल प्रिमो दे रिवेरा के निरंकुश शासन का जन्म हुआ. हालांकि फ्रेंच कम्युनिस्ट पार्टी (पीसीएफ) पोपुलर फ्रंट के समय में ही आकर एक लोकप्रिय पार्टी बन पाई, लेकिन इसने खास तौर से औपनिवेशिक मामलों में पहले से ही अपना ताकतवर असर डालना शुरू कर दिया था. नई–नई बनी पार्टी ने पूरी ऊर्जा के साथ अब्द एल–करीम के बागियों का समर्थन किया, खासकर तब जब यह साफ हो गया कि वो जल्दी ही फ्रांसीसी ठिकानों पर भी हमला करने वाले हैं. "बैंकरों" और "पूंजीवादी युद्धों" के खिलाफ उन्होंने "स्वतंत्र रिफ रिपब्लिक को मान्यता दिए जाने" की मांग की. 10 सितंबर 1924 को बागी नेता द्वारा पूरी स्वतंत्रता की मांग किए जाने के बाद, ज्यॉक डॉरिए और पियरे सेमा ने तार लिख कर फ्रेंच कम्युनिस्ट पार्टी की तरफ से अब्द एल–करीम को प्रोत्साहित किया और डोरिए ने युद्ध के खिलाफ राय बनाने की कोशिश करते हुए हेक्सागन की यात्रा की.

कम्युनिस्टों के विरोध ने मोते जैसे सोशलिस्टों को नाराज कर दिया जिसके बाद वे उत्तरोत्तर अपने पुराने दक्षिणपंथी दुश्मनों के साथ काम करने के लिए इच्छुक होने लगे और उनके द्वारा बलप्रयोग के उपायों का समर्थन करने लगे. दक्षिणपंथ से उनके इस तालमेल की चाहत को बाद की कुछ घटनाओं से बढ़ावा ही मिला जिसमें शामिल थेः 1926 में मेसाली हाज की एतोली नोर अफ्रीकाने की औपचारिक स्थापना जो कि पीसीएफ के साथ नजदीकी रिश्तों

वाला एक अल्जीरियाई राष्ट्रवादी आंदोलन था; हिंदचीन में राष्ट्रवादी उभार जिसने 1930 में येन बे के विद्रोह को जन्म दिया; ट्यूनीशिया, मिस्र, भारत और दूसरी जगहों पर स्वतंत्रता आंदोलनों के उभार; और तुर्की गणतंत्र की स्थापना.

अधिकारियों को आशंका हुई कि कम्युनिस्ट और राष्ट्रवादी क्रांतिकारी औपनिवेशिक देशों की आजादियों का इस्तेमाल पेरिस के बढ़ते हुए औपनिवेशिक सर्वहारा को अपने पाले में लाने के लिए करेंगे और फिर दूसरे देशों में क्रांतियों का निर्यात करने लगेंगे. बाद में लिखे गए एक रिपोर्ट में इसे समझाया गया था: "पेरिस के बिना, तीन उत्तरी अफ्रीकी इलाकों में मुसलमानों के आंदोलन को आसानी से रोका जा सकता है."

हत्याओं के फौरन बाद, मार्च 1924 में, गृह मामलों के एक रेडिकल मंत्री कैमिली शॉटें ने इस खूनी घटना को दोहराए जाने से रोकने और खासकर पेरिस में व्यवस्था बनाए रखने के लिए एक विशेष आयोग का गठन किया. उन्होंने अपने डिपार्टमेंट ऑफ अल्जीरियन अफेयर्स और साथ ही मिनिस्ट्रीज ऑफ कॉलोनीज एंड लेबर तथा म्युनिसिपल काउंसिल ऑफ पेरिस के प्रतिनिधियों को बुला कर एक बैठक की ताकि अल्जीरियाई आप्रवासन को सीमित करने की रणनीति बनाई जा सके और जिन प्रवासियों के आने को टाला नहीं जा सकता हो, उनको मदद मुहैया कराई जाए.

इस बात की आशंका थी कि अगर उत्तरी अफ्रीकी आप्रवासन पर पूरी तरह पाबंदी लगा दी गई तो इससे फ्रांसीसी उपनिवेशों में विद्रोह भड़क उठेगा और औपनिवेशिक देशों में आप्रवासी लोग कम्युनिस्टों और राष्ट्रवादी विपक्षियों के हाथों में चले जाएंगे. इसलिए शॉटें आयोग ने फ्रांस की औपनिवेशिक ताकत का फायदा उठाते हुए एक के बाद एक अनेक प्रशासनिक बाधाएं थोपीं, जिसने मौजूदा कानूनों द्वारा गारंटी की गई आजादियों को काफी हद तक सीमित कर दिया. वहां जुटे अधिकारियों ने, जिनमें से अनेक विभिन्न विचारधारात्मक नजरियों वाले थे, एक राय से इस पर वोट दिया कि अल्जीरिया से आने वाले तीसरे या चौथे दर्जे के सभी मुसाफिरों को मिनिस्ट्री ऑफ लेबर से एक अनुबंध हासिल करना होगा, एक सरकारी डॉक्टर द्वारा शारीरिक जांच से गुजरना होगा ताकि टीबी की आशंका को दूर किया जा सके, और अपनी पहचान को साबित करना होगा जिसके लिए उन्हें फोटोग्राफ लगे हुए खास तौर से बनाए गए पहचान पत्र पेश करने होंगे.

इतिहासकार क्लिफर्ड रोजेनबर्ग, जिनकी किताब पोलिसिंग पेरिस—द ओरिजिन्स ऑफ मॉडर्न इमिग्रेशन कंट्रोल बिटवीन द वार्स (पृ. 141—44) से मैंने ऊपर की पंक्तियां उद्धृत की हैं, ने दिखाया है कि कैसे औपनिवेशिक अधिकारियों ने अपनी आप्रवासन नीतियों को रचने के लिए इन जैसी घटनाओं का इस्तेमाल किया. ऐसा

ठीक उन मामलों में हुआ जहां औपनिवेशिक राजनीतिक वर्ग के एक हिस्से ने आप्रवासियों के लिए कुछ सुरक्षात्मक उपायों को लागू करने के लिए मानवतावादी आवाज उठाई थी. रोजेनबर्ग ने उस वक्त की पुलिस फाइलों का व्यापक इस्तेमाल करते हुए आप्रवासन नियंत्रण और राजनीतिक निगरानी के इतिहास के एक महत्त्वपूर्ण पल को हमारे सामने पेश किया है. वे दिखाते हैं कि कैसे पहले विश्व युद्ध के बाद के बरसों में बोल्शेविक क्रांति और आप्रवासियों के अपराधी होने की प्रेत छाया से डरी हुई फ्रांसीसी पुलिस दुनिया की पहली बड़ी ताकत बन गई थी जिसने नागरिकता और राष्ट्रीय मूल के बीच के फर्क को व्यवस्थित तौर पर लागू किया था. 1920 के दशक में, जब फ्रांस की राजधानी शरणार्थियों, असहमति रखनेवाले लोगों और पूरे यूरोप और भूमध्यसागर के दूसरी तरफ के मजदूरों की पसंदीदा जगह के रूप में उभरी, फ्रांसीसी पुलिस अधिकारियों ने आप्रवासियों के मुहल्लों में छापे मारने शुरू किए ताकि उन गैरकानूनी विदेशियों (एलियंस) को डरा कर उन्हें प्रशासन के पास अपना पंजीकरण कराने के लिए मजबूर किया जाए और जिनके पास ठीक–ठाक दस्तावेज न हों उन्हें गिरफ्तार किया जाए. पुलिस ने उत्तरी अफ्रीका से आने वाले औपनिवेशिक मजदूरों पर विशेष ध्यान देना शुरू किया, एक विशेष पुलिस ब्रिगेड के जरिए इन मजदूरों पर निगाह रखा जाने लगा और जब वे बीमार पड़ते तो उन्हें उनके अस्पतालों में अलग–थलग कर दिया जाता. कानूनी श्रेणियां तो बरसों से मौजूद थी, लेकिन अब उन पर अमल किया जाने लगा था और इसलिए उनकी अहमियत अब पहले के मुकाबले बढ़ गई थी. ये श्रेणियां तय करती थीं कि परिवार एक साथ रह सकते हैं या नहीं, या फिर लोगों को नौकरी पर बनाए रखा जाए या उन्हें भागने पर मजबूर कर दिया जाए. दूसरे विश्व युद्ध के दौरान पहचान के नियंत्रणों के जरिए पूरी आबादी की निशानदेही कर ली गई थी ताकि उसे भौतिक रूप से खत्म किया जा सके. रोजेनबर्ग दावा करते हैं कि थर्ड रिपब्लिक के दौरान विदेशियों के साथ जो व्यवहार किए गए, उसके प्रभाव से आगे चल कर वैसा ही व्यवहार विशी शासन ने भी यहूदियों के साथ किया. उस वक्त शुरू किए गए पहचान के तरीके एक बार फिर आज के वक्त में प्रासंगिक हो गए हैं. उन्होंने समावेशन और बहिष्करण के तरीकों को जन्म दिया जो अभी भी अमल में लाए जाते हैं, क्योंकि पश्चिम के धनी राज्यों की यह बाध्यता है कि अपने नागरिकों के हितों का ध्यान रखने के साथ–साथ वे विदेशियों की भर्ती भी करें ताकि उनके यहां श्रमिकों की कमी पूरी की जा सके.

आधुनिक मानवतावाद का विकास इसी परिदृश्य के एक अंग के रूप में हुआ. शुरुआती मानवतावाद बीमारी के इलाज के रूप में "असामान्य" की आत्मा को बदलना चाहता था, इसलिए शिक्षाविद, अध्यापक, मिशनरी, प्रशासक और चिंतक इस मुद्दे पर काम कर रहे थे कि असामान्य समाजों को कैसे सुधारा जाए. आधुनिक मानवतावाद को पुरानी तकनीक के साथ नई तकनीक को मिलाना पड़ा. इस नई तकनीक में शामिल थे देखरेख, सुरक्षा, सूचनाएं

जमा करना, रोकटोक, दखलंदाजी, और संप्रभुता के एक अजीबोगरीब सिद्धांत की खोज, जिम्मेदारी का एकतरफा सिद्धांत, और विशालकाय मानवतावादी तंत्र (जिनकी तुलना पार–राष्ट्रीय कॉर्पोरेशनों यानी टीएनसीज से की जा सकती है). व्यावहारिक अर्थों में, आज इसका मतलब अड़ियल शरणार्थियों और प्रवासियों को पैदा करने वाले समाजों का प्रबंधन करना है, ताकि उन्हें अपनी जगहों को छोड़ने से रोका जा सके, उन्हें राष्ट्रीय भू–सीमाओं के भीतर रखा जा सके और समाजों का आखिरकार "एक प्रबुद्ध तरीके" से प्रबंधन किया जा सके.

वापस उस दौर पर लौटते हैं जिसका मैं जिक्र कर रहा था. उस दौर में सरकारी कामकाज में कानूनों की जगह नीतियां और लोकप्रिय तौर पर चुनी गई सभाओं (असेंबलियों) के निर्देश अहमियत हासिल करने लगे थे. उपनिवेशों और औपनिवेशिक, दोनों ही तरह के देशों के अनुभव दिखाते हैं कि कैसे इस काल में समाजों पर नियंत्रण रखने और उनका प्रबंधन करने वाली नीतियां शुरू की गईं. राहत संगठनों का जन्म हुआ, तकनीकी तौर पर जिसका मतलब भेद्यता (वल्नेरबिलिटी) का अंत था. एक जगह से दूसरी तरह जाने वाले आबादी समूहों का प्रबंधन सांसत में फंसे आधुनिक शासन के लिए एक जादुई छड़ी साबित हुई. सरकारों ने अपने सामने खड़े विरोधाभासी काम के प्रति सचेत नजरिया अपनाना शुरू कर दियाः इन समूहों को कितना नजरों से ओझल रखना है और कितना नजरों के दायरे में रखना है. मैरी डिउहर्स्ट लुई अपनी पुस्तक, द बाउंड्रीज ऑफ द रिपब्लिक (2007) में दिखाती हैं कि उद्योगों के विस्तार के लिए प्रवासी मजदूरों की अहमियत जिस सीमा तक थी, उसी सीमा तक वे नजरों के दायरे में बने रहे. दूसरी तरफ, राष्ट्रीय स्तर पर बनाई गई राजनीतिक व्यवस्था और बाजार में प्रवासी मजदूर समूहों को लगभग अदृश्य बनाकर रखने को भी उच्च प्राथमिकता दी गयी. सरकारों को भारी उलझन का सामना करना पड़ाः (क) शरणार्थी कौन था? (ख) अकालों, आपदाओं और महामारियों से विस्थापित हुए लोगों के साथ क्या किया जाए? (ग) सरकारी जिम्मेदारियों की सीमा कहां तक थी? (घ) भूख को मिटाना क्या सरकार का काम था या फिर यह उस आबादी समूह के नाकारा और असामान्य होने की निशानी थी? इस उलझन को सुलझाने की कोशिश अनेक तरह के कानूनों के निर्माण, नियमनों, दिशा–निर्देशों, देख–रेख के नए कायदों, शिविरों, आश्रयों, भोजन, पानी और दवाओं के रूप में सामने आई. इनके अलावा, और भी कई उपाय किये गये ताकि प्रवासियों को अपने से दूर रखने के लिए उनके आगमन का अनुमान लगाया जा सके और अपनी सीमा में उनके प्रवेश की रोकथाम के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित बलों का निर्माण किया जा सके. नए मानवतावाद का मुख्य हिस्सा इसी वक्त विकसित हुआ. "वंचितों की पनाहगाह" जेलखानों से मिलती–जुलती जगहें थीं, जिन्हें दानदाता संस्थाओं ने मुश्किल हालात से बच निकलने वाले प्रवासियों, खास कर लड़कियों और बुजुर्ग औरतों का स्वागत करने के लिए बनाया था. इन सबमें एक आम बात समान रूप से दिखती थी, और शायद ऐसा पहली बार हो रहा था कि प्रवासियों

को असुरक्षा का एक स्रोत मान कर उनके साथ उसी के मुताबिक व्यवहार किया जा रहा था. जबरन प्रवास के शिकार लोग अब एक जिन्दा शरीर थे, जिनकी आत्मा को बचाने की जरूरत अब नहीं थी, इसलिए नहीं कि इस बेबस, अभागे शरीर को जल्दी ही और अनिवार्य रूप से मर–खप जाना था, बल्कि इसलिए कि अब यह एक बेलगाम शरीर था उसका प्रबंधन और नियंत्रण करना जरूरी था. यही वह बिंदु था, जहां प्रवासी एक विषय के रूप में उभरा.

इस पर भी गौर कीजिए कि हमारे समय का एक और विरोधाभासी पहलू इसी काल में पहली बार देखा गया था. अगर मेहनतकशों के उत्पादन का अपना एक अंधेरा, गैरकानूनी पहलू है (जो उस चीज का प्रतिनिधित्व करता है जिसे हम संचय का आदिम तरीका कहने लगे हैं, और यह परिदृश्य को और जटिल बना देता है) तो तथ्य यह भी है कि उस वक्त की सरकारों ने प्रवासियों को समाज का स्वाभाविक हिस्सा बनाने के लिए कानून बनाने शुरु किये और इस दिशा में कदम उठाए, क्योंकि मोटे तौर पर श्रम बाजार का पुनर्संगठन एक स्वतंत्र न्यायिक माहौल में ही होना चाहिए, और यही वक्त था जब नेचुरलाइजेशन (प्रवासियों के नागरिक बनने की एक प्रक्रिया), निवास करने के अधिकार, नागरिकता कानून आदि से सम्बन्धित प्रावधान बनाए जाने लगे, और खून और जमीन (इलाके) के बीच के रिश्ते को परिभाषित या स्पष्ट किए जाने की जरूरत समझी जाने लगी. यह उम्मीद की गई कि ऐसे नेचुरलाइजेशन से श्रम की उपलब्धता कई गुना बढ़ जाएगी और साथ ही साथ पूंजी के वैश्विक विस्तार की विविधता भी बनी रहेगी जिसके बिना पूंजी का वैश्विक प्रभुत्व नामुमकिन था. आसान शब्दों में, इसका मतलब यह था कि श्रम के प्रवाह (आखिरकार प्रवासियों का प्रवाह भी श्रम प्रवाह ही है) को कानूनों और सरकारी तकनीकों द्वारा नियंत्रित और नियमित करना जरूरी था (हालांकि इन तकनीकों को गढ़ने का आधार एक पूंजीवादी तार्किकता ही हो सकती थी) जिन्हें एक किस्म की सम्प्रभु ताकत के साथ जोड़ना और उसके साथ उनकी जड़ों को स्थापित करना जरूरी था. थोड़े में कहें तो इसी काल में दो अलग–अलग तार्किकताओं – राज्य तथा सरकार की तार्किकताओं – के बीच रिश्ता कायम हुआ. मानवतावाद सरकारी तार्किकता का हिस्सा बन गया. इस काल में ही अधिकारों और खतरों, दोनों का मेल हुआ.

यह उथल–पुथल से भरी हुई एक अराजक प्रक्रिया थी और इसे पहले से सोच–समझ कर नहीं चलाया गया था. हालांकि इस दौरान गहन प्रशासनिक केंद्रीकरण किया गया, तब भी प्रशासनिक केंद्र एक हद तक ही चीजों को अंजाम दे सकते थे, जबकि उपनगरों और दूर–दराज की सीमाओं पर स्थित शहरों–कस्बों में पुलिस, नगरपालिका के क्लर्क और स्थानीय राजनेता जमीनी स्तर पर फैसला लेते थे कि उन दिशा–निर्देशों को कैसे और कितना अमल में लाना है, क्योंकि यह सुनिश्चित करने की प्राथमिक जिम्मेदारी हमेशा उनके सामने होती थी कि समाज आसानी से चलता रहे. इसलिए दुनिया के अलग–अलग हिस्सों में प्रवासियों की किस्मत एक जैसी नहीं थी. प्रवासियों के अधिकार मानवाधिकारों के किसी कायदे

के तहत विकसित नहीं हुए थे; न ही उन्हें मिली गारंटियां किसी मेहरबान नागरिक समाज (सिविल सोसायटी) और चीजों को जानने–समझने वाले सार्वजनिक हलके से हासिल हुई थीं. वे अलग–अलग समूहों की विवादास्पद मांगों और उतने ही जटिल संस्थागत और न्यायिक लड़ाइयों से विकसित हुई थीं. पनाह, इन्कार, सुरक्षा और असुरक्षा के विमर्श और सरकारों और सामाजिक समूहों द्वारा इसके बाद उठाए जाने वाले कदमों ने इस प्रक्रिया को बेहद पराश्रित या अनिश्चित बना दिया था. ऐसा ही भारत में भी हुआ. 1850 के दशक में कानून के शासन की स्थापना से लेकर 1930 और 1940 के दशक के शुरुआती दौर में विभिन्न राष्ट्रीय सुरक्षा प्रावधानों के लागू होने की अवधि में हमें एक उभरते हुए लोकतंत्र के सभी पक्के संकेत दिखते हैं जिनकी खासियत होनी थी समावेशन व बहिष्करण तथा एक स्तरीकृत राष्ट्रीय श्रम बाजार का निर्माण. इसलिए हम जिस राष्ट्रवादी इतिहास को पढ़ते हैं वह सिर्फ एक मिथकीय इतिहास है, क्योंकि यह मिथक उस समय की आबादी की संरचना की उथल–पुथल भरी प्रक्रियाओं और नियंत्रण की तकनीकों को छुपाता है, जिनके सिर्फ अंतिम संकेतों को हम नागरिकता अधिनियम (सिटिजनशिप एक्ट), विदेशी अधिनियम (फॉरेनर्स एक्ट) को पारित किए जाने और आप्रवासन नियमों को अंतिम रूप दिए जाने में देख सकते हैं. शायद यह वही बात है, जिसे थियोदोर अदोर्नो ने "नेगेटिव डायलेक्टिक्स" (नेगेटिव डायलेक्टिक्स, अनु. ई.बी. एश्टन, 2000) का नाम दिया था जिसके तहत हम जितना ही श्रम की भौतिक प्रक्रिया से खुद को अलग करते हुए राष्ट्र रूप के बारे में सोचते हैं, उतना ही हम श्रम रूप के हिंसक इतिहास की ओर धकेल दिए जाते हैं.

साम्राज्य, सीमाएं और प्रवासी

श्रम के इतिहास की इस अपेक्षाकृत अनदेखी की एक और वजह हो सकती है. हमने इस तथ्य की अनदेखी की कि हम जिस राष्ट्र रूप का अध्ययन कर रहे थे उसका एक अच्छा–खासा हिस्सा साम्राज्यीय संरचना या संरचनाओं पर आधारित था. और, यह राष्ट्र जिस राज्य को बनाने की कोशिश कर रहा था, वो अपने विकास के लिहाज से पहले से ही साम्राज्यीय परंपराओं और संदर्भों पर टिका हुआ था. भूभाग, प्राधिकार और अधिकारों के एक असाधारण सम्मिश्रण, जिसने राष्ट्र राज्य के उभार में मदद दी, पर कई मायनों में साम्राज्यीय विरासत की छाप थी. साम्राज्यों की खासियत यह थी कि उनके भीतर अनेक किस्म की आबादी का प्रवाह जारी था. इतिहास में अलग–अलग मौकों पर साम्राज्यों के खिलाफ बर्बर लोग सामने आए थे. बर्बर लोग प्रवासी गतिविधियों का प्रतिनिधित्व करते थे, और हमारे अपने समय में हम यह कह सकते हैं कि उनका उस चीज पर एक निर्णायक प्रभाव है, जिसे सांद्रो मेस्साद्रा ने "नागरिकता की सीमाएं/हदबंदियां" कहा है ("बॉर्डर्स, कन्फाइन्स, माइग्रेशंस, एंड सिटिजनशिप", मई 2006, http://observatorio.fadaiat.net/tiki&index.php?page=Borders%2C%20Migrations%2C%20Citizenshp)-

सांद्रो मेस्साद्रा और ब्रेट नीलसन द्वारा किए गए साझे काम (बॉर्डर ऐज मेथड, 2013) की बदौलत हमें एक संस्था (इंस्टीट्युशन) के रूप में सीमा से जुड़ी शासन पद्धतियों की समकालीन अर्थव्यवस्था, और श्रम आप्रवासन अध्ययनों में इसकी अवधारणात्मक प्रासंगिकता को देखने के लिए एक गहरी अंतर्दृष्टि मिली है.

जैसा कि हम जानते हैं, सीमाओं की जानी–पहचानी अवधारणा आधुनिक राज्य और इसके भू– राजनीतिक पहलुओं के उभार के साथ पैदा हुई थी जिसके तहत एक व्यक्ति को ऐतिहासिक तौर पर एक नागरिक बना दिया गया. राष्ट्र, राज्य, नागरिक, सीमा – ये सभी एक गजब के तालमेल के साथ एक जगह आ गए दिख रहे थे. अब दो चीजों ने इस तालमेल को गड़बड़ा दियाः साम्राज्य का उभार और सीमाओं के पार प्रवासी गतिविधियां, जिन्होंने मिलकर नागरिकता की हमारी समझदारी को संदेह के घेरे में डाल दिया. शुरू–शुरू में संप्रभुता हमेशा केवल एक भूभाग के अर्थ में नहीं थी, और साम्राज्यीय संप्रभुता साम्राज्य की सीमाओं का उतना संकेत नहीं देती थी (हालांकि हैड्रियन पहला ऐसा ज्ञात शासक था, जिसने इलाकाई निशानियों को अपने साम्राज्य की पहुंच की जानकारी देने के लिए इस्तेमाल किया), जितना इस बात का पता देती थी कि साम्राज्य के पास ऐसी खास ताकतें थीं कि वह, जब भी जरूरत महसूस हो, कानून से ऊपर जा सकता था और जिंदगियों को संचालित कर सकता था. हालांकि इस मामले में भी संचालन की शक्ति को उदार बना कर उसे साम्राज्य की शासनकारी जरूरतों के दायरे में ले आया गया था – मिसाल के लिए, इसे रोमन साम्राज्य में ईसाइयों के संदर्भ में देखा जा सकता है. जो रोमन था, वो एक समस्या भी था, और लोगों का सीमाओं के आरपार रोम में आना चीजों को सिर्फ मुश्किल ही बना रहा था. इन घुसपैठों और साम्राज्यीय स्थितियों के तहत नागरिकता को परिभाषित करने की अंतर्निहित मुश्किलों के चलते राज्य के ही एक रूप के तौर पर साम्राज्य का अस्तित्व दिनोंदिन असंभव होने लगा. जैसा कि हमें मालूम है, यह समस्या आधुनिक राजनीतिक समाज के उभार के साथ अस्थायी रूप से सुलझ गई, जहां नागरिकता, भौगोलिकता, सीमाएं और संप्रभुता आधुनिक राष्ट्र राज्य के रूप में एक जगह आकर मिल गई थीं – लेकिन हमें इस पर गौर करना होगा कि यह सिर्फ लोकप्रिय लोकतंत्र की वजह से ही मुमकिन नहीं हुआ था (जो रूसो का सपना था और जिसकी उम्मीद हरेक उदारवादी राजनीतिक दार्शनिक ने की है), बल्कि यह उपनिवेशवाद की वजह से भी मुमकिन हुआ. इस मामले में उपनिशेवाद का मतलब कई चीजों से है.

उपनिवेशवाद का मतलब हैः

(क) एक संप्रभु राज्य और उपनिवेश के रूप में जाने जानेवाले उसके अधीन इलाकों के बीच एक साफ इलाकाई फर्क;

(ख) राजकाज में भागीदारों यानी नागरिकों और विषय (सब्जेक्ट्स) के बीच में एक साफ कानूनी फर्क;

(ग) अर्थव्यवस्था के विकसित सेक्टरों और प्राथमिक वस्तुओं के उत्पादन के लिए साफ तौर पर निश्चित स्थान; और, आखिर में,

(घ) भूभागों पर कब्जा करने, इसके बाद उन भूभागों को हड़पने और दुनिया की अर्थव्यवस्थाओं पर दूर से नियंत्रण करने को समन्वित करने का एक कारगर तरीका. इस तरह आधुनिक राष्ट्र राज्य ने साम्राज्यी रूप की जगह ली; और राष्ट्र का साम्राज्यीय रूप ऐतिहासिक रूप से उन दोहरी समस्याओं के समाधान के रूप में सामने आया जिसके तहत एक साम्राज्य की सीमाएं थीं और राज्य की सत्ता की वैधता के लिए भौगोलिक सीमाओं के सवाल को सुलझाने की जरूरत पड़ती थी. मानो राजनीति ने आंतरिक और बाहरी के बीच फर्क के सवाल को सुलझा दिया हो, जिसके बारे में माना जाता था कि व्यवस्था और शांति की गारंटी करने वाली यह अकेली चीज थी. इसके बावजूद, जैसा कि पिछले कुछ पन्नों में मैंने संकेत दिए हैं, उन्नीसवीं सदी के दूसरे आधे हिस्से और बीसवीं सदी के शुरुआती दशकों में आप्रवासन के प्रवाह के कारण, जो औपनिवेशिक–साम्राज्यीय ढांचों की वजह से मुमकिन हुआ था, राष्ट्र–राज्य के रूप में सीमाओं के सवाल का समाधान आंशिक तौर पर ही हो पाया. इसलिए, सस्किया सस्सेन के शब्दों में कहें तो प्रवासन का इतिहास "यूरोप के इतिहास पर एक धुंधला कंगूरा है" – जिसमें विदेशी धरती पर रहने वाले भटक रहे, निर्वासित और उजड़े हुए व्यक्तियों के बड़े जन समूहों, जिन्हें वे देश अपना मानने के लिए तैयार नहीं जहां वे रह रहे हैं, का अनकहा इतिहास समाया हुआ है. इन आप्रवासियों की आवाजाही ने राज्यव्यवस्था की राष्ट्रीय, जातीय और भाषाई विशेषताओं और राजनीतिक समाजों में दरार डाल दी है. अपने बचाव में साम्राज्य अब मेटा–बॉर्डर्स (सीमाओं की सीमा) की बातें करता है, जिसके जरिए साम्राज्य और बर्बरों की भूमि के बीच में फर्क का संकेत दिया जाता है न कि अपनी घटक इकाइयों के बीच की सीमाओं के बारे में.

इसके बावजूद, एक रणनीति के रूप में इसकी किस्मत मिली–जुली रही है. पिछले पंद्रह बरसों में, एक रणनीति के रूप में मेटा–बॉर्डर्स को संस्थागत बनाए जाने के परिणामस्वरूप साम्राज्यीय भूमि की अवस्थिति और परिभाषा बेहतर बनाने में मदद मिली है. वहीं इसने उन लोगों की आवाजाही को रोकने में अपने नाकारेपन का परिचय दिया है जिन्हें साम्राज्य इस ग्रह से परे का जीव मानता है. इसलिए, मिसाल के तौर पर, "नए यूरोप" से "पुराने यूरोप" (या मेक्सिको या पुएर्तो रिको से अमेरिका) की तरफ श्रम का बहाव यूरोपीय–अटलांटिक महाद्वीप की साम्राज्यीय–सभ्यतागत केंद्र को खतरे में डाल देता है, और नतीजतन साम्राज्य के अंदरूनी सरहदों पर दबाव डालता है. इस तरह सीमाओं/सरहदों पर लगातार दबाव बना हुआ है, और यह तनाव साम्राज्य के अंदरूनी हिस्सों में उभर–उभर कर आता है. इस स्थिति में, संप्रभुता का वजूद तो है लेकिन यह एक स्रोत या अंग में निहित नहीं है, बल्कि यह साम्राज्य के अर्ध–न्यायिक, अर्ध आर्थिक–राजनीतिक स्पेस में है, जहां अनेक कर्त्ता एक साथ काम करते हैं, और जिसकी मुख्य खासियत यह है कि साम्राज्य अपनी

व्यावहारिकता के लिए संप्रभुता पर जितना निर्भर है, उससे कहीं अधिक संप्रभुता अपनी प्रासंगिकता और वैधता के लिए साम्राज्यीय रूप पर निर्भर है. इस तरह हर जगह राष्ट्रों द्वारा साम्राज्यीय सरहदें पुनरुत्पादित की जा रही हैं ताकि प्रवासियों को खोज कर उन्हें दूर या अलग–थलग रखा जा सके. तब भी, हमें यह याद रखना होगा कि साम्राज्य और वैश्वीकरण के इस दौर में, शासनकारी रणनीतियां यह सुनिश्चित करती हैं कि श्रम का बहाव दिशाहीन नहीं होना चाहिए; उन्हें श्रम विभाजन के लागू किए गए कायदों के हिसाब से ही चलना चाहिए. साम्राज्यीय स्थितियों के तहत यही शासनकारी तार्किकता है जिसका हवाला मैं दे रहा हूं. आरक्षित फौज या अतिरिक्त श्रम की सेना को अनिवार्य रूप से वैश्विक श्रम बाजार के संस्थागत नियमों का पालन करना होता है. इन संस्थागत नियमों का तर्क उस दौर में स्थापित किया गया था, जिसका जिक्र मैंने इस लेख में किया है. इनकी जड़ों और इनके विकास के इतिहास पर नजर डालना जरूरी है क्योंकि तभी हमें यह समझ में आ सकेगा कि कैसे आज का साम्राज्य बर्बरों की पहचान करके उन पर ठप्पे लगाता है – यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसकी झलक मेल गिब्सन की हॉलीवुड फिल्मों में (हमारे पास बॉलीवुड में भी ऐसे उदाहरण मौजूद हैं) या फिर नायल फर्गुसन के लेखन में मिलती है, जिनके सबूत हमें मिलते हैं पेंटागन और कैलीफॉर्निया जेल व्यवस्था (या फिर भारत और पाकिस्तान के अनेक उप–जेलों) के बंद दरवाजों के पीछे; या फिर अमेरिका–मेक्सिको सरहद पर, या किसी भी सरहद पर, चौकस हत्यारे गिरोहों की कार्रवाइयों में; बदला लेने पर उतारू गिरोहों द्वारा दुनिया के अनेक हिस्सों में मूलनिवासियों के नस्ली सफाए की खौफनाक घटनाओं में; और उदारवादियों के दिवालिएपन में जो अभी कल तक सार्वभौम नागरिकता और वैश्विक नागरिक समुदाय (या अगर आप पसंद करें तो इसे वैश्विक सिविल सोसायटी भी कह सकते हैं) के आदर्शों की हिमायत कर रहे थे. ये सपने, उनका खोखलापन, उनका टूटना और साम्राज्य और बर्बरों के बीच मुठभेड़ की कठोर हकीकत – ये सभी उन्नीसवीं सदी के आखिरी पचास वर्षों में हो चुके हैं, और एक सदी के बाद ये सभी फिर से पर्दे पर खेले जा रहे हैं.

थोड़े में कहें तो उन्नीसवीं सदी का आखिरी और बीसवीं सदी का शुरुआती हिस्सा वैश्वीकरण का एक और दौर था जब प्रवास पर नियंत्रण की व्यवस्था की गई थी. आज की तरह तब भी प्रवासी श्रम पर नियंत्रण महज सरकारों के सरोकार नहीं थे. रोजगारदाता, भर्ती करने वाले दलाल, मजदूरों को भेजने और अपने यहां जगह देने वाले देशों में मजदूरों के दलाल, वकील, अदालतें, प्रशिक्षण संस्थाएं, साहूकार–महाजन और दूसरी कर्ज देने वाली एजेंसियां, नौकरशाह, नगरपालिका कार्यालय, तस्कर और अलग–अलग किस्म के ढेर सारे बिचौलिए राष्ट्रों के बीच मजदूरों के प्रवाह से फायदा उठाने की उम्मीद रखते थे. यह नेटवर्क बढ़ता गया और उनमें से कुछ, चार्ल्स टिली के शब्दों में, "प्रत्यारोपित नेटवर्क" (ट्रांस्प्लांटेड नेटवर्क) थे. टिली ने इसकी तरफ ध्यान दिलाया है कि उन्नीसवीं सदी की शुरुआत तक

आते–आते उभरते पूंजीवादी आर्थिक एवं संपत्ति सम्बन्धों की यह खासियत दिखने लगी कि इसके तहत उजरती श्रम का विस्तार हो रहा था, घर और उत्पादन के साधनों के बीच स्पष्ट विभाजन हो रहा था, और व्यावसायिक कृषि की उत्पादकता बढ़ रही थी. इसके साथ ही, भूमि संसाधन घट रहे थे और शहरी इलाकों में श्रमिकों की मांग बढ़ रही थी. इन सबका मिलाजुला असर यह हुआ कि बहुत सारे यूरोपीय लोगों को सुदूर प्रवास करना तर्कसम्मत लगने लगा. स्थानीय स्थितियों ने, जिनमें जमीन पर काम करने का स्वरूप, खेतिहर जरूरतें और संसाधन प्रबंधन भी शामिल हैं, प्रवास और वापस लौटने की दरों पर भारी असर डाला. इससे यह भी निर्धारित हुआ कि किस तरह के लोग घरों को छोड़ कर जाएंगे, जैसे कि दक्षिणी इटली के कुछ इलाकों में, जहां जमीन पर मालिकाना अभी भी संभव था, वहां से जाने वाले प्रवासियों ने उम्मीद की थी कि वे अमेरिका में मिलने वाली मजदूरी से वापस लौट कर जमीन खरीदेंगे. जमीन के मालिकाने के अधिकार से वंचित नॉर्वे के मवेशी पालक किसानों के बेटे यूरोप छोड़ कर चले गए. प्रवास की इन सभी कार्रवाइयों में संपर्कों और संबंधों (नेटवर्कों) के बारे में जानकारी एक अहम कारक थी. दूसरी तरफ, मजदूरों ने नियंत्रण की इन व्यवस्थाओं के साथ निबटने के विभिन्न तरीके भी विकसित कर लिए थे, भले ही ये तरीके ज्यादातर समय आंशिक ही रहे हों. उन्होंने उनसे बच निकलने के उपाय भी खोजे थे. लेकिन फिर भी वे बहुत ज्यादा असुरक्षित थे. आज शायद अनेक मामलों में श्रम अधिकारों की वजह से हालात बेहतर हैं. लेकिन यह तथ्य अपनी जगह कायम है कि वैश्वीकरण का मतलब प्रवासी श्रम की भर्ती का वैश्वीकरण है भले ही हालात वैसे नहीं हों जैसे डेढ़ सौ साल पहले हुआ करते थे और भले ही आज के वैश्वीकरण में नए संघटक कारक भी जुड़ गए हों. यह बात खासकर कुशल श्रम के प्रवास के मामले में लागू होती है, और उस श्रम के मामले में भी जिसे हम "अभौतिक श्रम" (इम्ममेटेरियल लेबर) कह सकते हैं. हालांकि, अनेक मामलों में, आज हालात ने जो रुख लिया है वह उस दौर की याद दिलाता है जिसकी बात आज मैं कर रहा हूं. मिसाल के लिए, वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला में अंतर्निहित शोषण (आज हम थाईलैंड में बर्मी प्रवासी मजदूरों की बात सोच सकते हैं), लगभग शून्य में से एक नए आर्थिक स्पेस की रचना (मिसाल के लिए, मकाऊ), हांगकांग में फिलिपींस की नाइटक्लब हॉस्टेस और लड़कियां, या फिर वहां काम करने वाले नेपाली मजदूर, ताईवान में प्रवासी महिला मजदूर, प्रवासी मजदूरों और गैरकानूनी तौर पर लाए गए मजदूरों (यौनकर्मियों समेत) की मौजूदगी वाले विशाल शहर, जैसे कि एथेंस में देखभाल करने का काम करने वाली जॉर्जियाई या आर्मेनियाई औरतें. यौनकर्म का वैश्वीकरण अब बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहा है जिसमें इंटरनेट अहम भूमिका अदा कर रहा है. द इकोनॉमिस्ट द्वारा किए गए एक हालिया अध्ययन (9 अगस्त 2014) में विभिन्न जातीय मूल के यौनकर्मियों के उतने ही विविधता भरे वैश्विक देह बाजार में दाखिले की चर्चा की गई है. यूरोपीय संघ के विस्तार और वैश्विक वित्तीय टकराव के बाद पुराने यूरोप और अमेरिका में पूर्वी यूरोप के यौनकर्मी, तथा दुनिया के अलग अलग हिस्सों में अफ्रीका और मध्य

एशिया के यौनकर्मी यौन व्यापार की अहम खासियत बन गए हैं. इंटरनेट ने बाजार का विस्तार किया है, व्यापार को विभिन्न राष्ट्रीय कानूनों से बचने में मदद की है, अंशकालिक यौन कर्मियों को भी काम में लगने की छूट दी है और नए पहरेदारों और निगरानी के नए रूपों की रचना की है, यौन कर्मियों के घंटे की दरों में नया लचीलापन पैदा किया है और यौन कर्म को विकेंद्रीकृत किया है.

हालांकि यह मुनासिब ही है कि प्रवासियों पर किये गये अध्ययन हमारे अपने समय पर ध्यान केंद्रित करते हैं जैसे कि एशिया में प्रवासी श्रम पर सामूहिक रूप से किया गया अध्ययन (ट्रांस्नेशनल माइग्रेशन एंड वर्क इन एशिया, संपा. केविन हेविन्सन और केन यंग, 2006), लेकिन साम्राज्यों और खास कर औपनिवेशिक साम्राज्यों के इतिहास की समझ हासिल करना भी अच्छा रहेगा. इसके तहत उनकी सीमाओं के बनने के अभ्यासों और उन मनुष्यों का इतिहास भी शामिल है जो बार–बार इन सीमाओं और सरहदों को लांघते रहे और जिन्होंने प्रवास को हमारे समय के सबसे अधिक जैव–राजनीतिक आयामों में से एक बना दिया. पीछे मुड़कर देखते हुए, हम यह कह सकते हैं कि यह उसी दौर में हुआ कि गतिशील या अस्थिर समूहों पर नियंत्रण करना जैव–सत्ता के सबसे अहम पहलुओं में से एक बनने लगा था. हमारी आज की दुनिया में दिखने वाली श्रम की व्यक्तिपरकता के विभिन्न रूपों में से कुछ के उभार के इतिहास को उस दौर में खोजा जा सकता है.

इस लेख में जिस अवधि का जिक्र किया गया है उस अवधि में बागान और रेलवे निर्माण उद्योगों का जो अर्थ था, आज के दौर में अनेक अर्थों में देखभाल (केयर) उद्योग और निर्माण (कंस्ट्रक्शन) उद्योग उस का प्रतिनिधित्व करते हैं. संयुक्त राज्य अमेरिका से लेकर मध्य पूर्व, दक्षिण पूर्व एशिया, और सुदूर पूर्व तक, दुनिया भर में राजमिस्त्री, प्लंबर, कुली, नर्सें, आयाएं, यौनकर्मी, मनोरंजन और निर्माण उद्योगों में काम करने वाले मजदूर हमें उन्नीसवीं सदी के आखिरी दौर और बीसवीं सदी के आरंभिक दौर की याद दिलाते हैं. जरूरी श्रम के उत्पादन के लिए विकासशील देशों में नर्सिंग स्कूल फल–फूल रहे हैं. बांग्लादेश में नर्सिंग और प्रसव का प्रशिक्षण देने वाले 130 ऐसे स्कूल हैं, इंडोनेशिया में इनकी संख्या 1400 है, म्यांमार में 48, नेपाल में 124, श्रीलंका में 26, और भारत में ऐसे स्कूलों की संख्या 4000 से ज्यादा है. विदेश भेजे जाने वाले प्रशिक्षित कर्मियों में दाइयों और आयाओं की संख्या बहुत ज्यादा है. इन सबके बीच अमेरिका में पंजीकृत नर्सों की साप्ताहिक आमदनी 2005 से 2011 तक एक ही जगह ठहरी रही, और असल में उन्हें वास्तविक क्रयशक्ति में 5 फीसदी की गिरावट भी सहन करनी पड़ी. इसी अवधि में अमेरिका में आने वाली गेस्ट नर्सों (घरों में रह कर काम करनेवाली नर्सों) की संख्या उल्लेखनीय रूप से बढ़ गई. 1994 में कुल पंजीकृत नर्सों में 9 फीसदी गेस्ट नर्सें थीं, 2008 तक उनकी संख्या बढ़ कर 16.3 फीसदी हो गई थी. और इस पर गौर कीजिए, इसी समय में एक साल के भीतर – अकेले 2010 में – पेशागत खतरों से होने वाले जख्म और बीमारियों की घटनाओं में 6 फीसदी का इजाफा हुआ. यौन उद्योगों और दूसरे

मनोरंजन उद्योगों में प्रवासी श्रम के मामलों में भी हमारे पास ऐसे ही आंकड़े हैं (संयुक्त राज्य अमेरिका के ब्यौरों के लिए देखिए, डीपीई फैक्टशीट, अप्रैल 2012 – (http://dpeaflcio.org/wp-content/uploads/Nursing-A-Profile-of-the-Profession-2012.pdf) और एशियाई आंकड़ों के लिए प्राकिन सुचाखाया द्वारा संकलित साउथ ईस्ट एशियन नर्सिंग यूनियन और वर्ल्ड मिडवाइफरी रिपोर्ट, 2011 देखें – (http://www.unfpa.org/sowmy/resources/docs/main_report/en_SOWMR_Full.pdf)

शायद ऊपर दिए गए आंकड़ों की तुलना में बीबीसी की खबर का यह हिस्सा आंखें खोलने में ज्यादा मददगार होगा.

छियालीस भारतीय नर्सें फौजी कब्जे वाले इराकी शहर तिरकित में घिरी हुई हैं, और उनमें से अनेक का कहना है कि वे जितना जल्दी मुमकिन हो भारत वापस लौटना चाहती हैं. लेकिन पिछले हफ्ते समस्या के सामने आने के ठीक पहले इराक से छुट्टी पर घर आई दूसरी दो नर्सों ने बीबीसी को बताया कि वे इराक वापस जाना चाहती हैं.

"हमलोग इराक के हालात को लेकर बहुत तनाव में हैं लेकिन मैं वहां काम करने के लिए वापस जाना चाहती हूं," सिंधु ने कहा जो दक्षिण भारतीय राज्य केरल से हैं और दक्षिणी इराकी शहर नासिरिया के एक हॉस्पिटल से छुट्टी पर हैं.

28 वर्षीया सिंधु चरमपंथी सुन्नी समूह आइएसआइएस द्वारा उत्तरी और मध्य इराकी कस्बों और शहरों को रौंदने की शुरुआत करने के एक दिन पहले, 10 जून को, घर लौटी थीं. 26 जून के लिए उनका टिकट बुक किया हुआ है, लेकिन भारत ने अपने नागरिकों को इराक नहीं जाने और वहां रह रहे लोगों को लौटने की यात्रा सलाह जारी की है.

सिंधु को मालूम है कि इराक में हालात गंभीर हैं, खासकर इस खबर के आने के बाद कि मोसुल शहर में 40 भारतीय कंस्ट्रक्शन मजदूरों का अपहरण कर लिया गया है.

लेकिन अगर वो नहीं जातीं तो उन्हें चिंता है कि वे उन "भारी कर्जों" को चुका नहीं पाएंगी, जो उन्होंने अपनी शिक्षा के लिए और भर्ती एजेंट को इराक में नौकरी खोजने के लिए देने की खातिर लिए थे. "नासिरिया में मेरे दोस्त रोज ही फोन करते हैं और बताते हैं कि मुझे वहां लौट जाना चाहिए क्योंकि वहां कोई समस्या नहीं है. मैं कुछ तय नहीं कर पा रही हूं. हम सभी तनाव में हैं. मैंने इस नौकरी को पाने के लिए भर्ती एजेंट को 150,000 रुपए दिए थे," वे कहती हैं.

"मेरी मां को गुर्दे की बीमारी है. उन्हें हफ्ते में तीन बार डायलिसिस पर जाना पड़ता है. मेरे पिता एक छोटे किसान हैं जिन्होंने मुझे पढ़ाने के लिए और भर्ती

एजेंट को देने के लिए अपने दोस्तों से कर्जे लिए. कुछ दोस्तों ने सूद लिया, कुछ ने नहीं लिया. अभी भी मुझे कर्जे उतारने हैं," वे कहती हैं.

इराक जाने से पहले सिंधु ने दिल्ली में एक नर्स के रूप में काम किया जहां उन्हें 11,000 रुपए (183 डॉलर) मासिक मिलते थे. नासिरिया में उन्हें 850 डॉलर मिलते हैं. वे सऊदी अरब, कुवैत या कतर जैसे मध्य पूर्व के दूसरे देशों में काम नहीं कर सकतीं, क्योंकि उनके पास नर्सिंग का डिप्लोमा है, डिग्री नहीं, जो इन देशों में काम करने के लिए जरूरी है.

"मुझे नहीं पता कि क्या करूं," वे कहती हैं. पिछले हफ्ते सुन्नी समूहों के लड़ाकों ने कई ईराकी कस्बों और शहरों पर कब्जा कर लिया जिसमें तिरकित भी शामिल है. इराक में ही नर्सिंग का काम कर रही छुट्टी पर आईं उनकी दोस्त सोनिया जोमोन भी इसको लेकर चिंतित हैं कि उन्होंने अपनी शिक्षा के लिए जो कर्ज लिया था, उसको वे किस तरह अदा कर पाएंगी.

"भर्ती एजेंट को देने के लिए मैंने जो कर्ज लिया था, वो मैंने चुका दिया है, लेकिन मुझे नहीं मालूम कि भारत में मिलने वाली तनख्वाह से अपना शिक्षा ऋण कैसे पूरा कर पाऊंगी," वो कहती हैं. हालांकि सोनिया "इराक में समस्या के सुलझने तक" इंतजार करने के लिए तैयार हैं. "मैं वहां काम करना चाहती हूं, क्योंकि वहां काम करना मुझे अच्छा लगता है."

तिरकित में फंसी अनेक नर्सें इस ऊहापोह में हैं कि वे भारत लौट जाएं या फिर इराक में ही बनी रहें. कइयों ने घर पर पैसे उधार लिए हुए हैं. वे कहती हैं कि वे उन्हें सिर्फ इराक में मिलने वाली ऊंची तनख्वाहों से ही चुका पाने में सक्षम हैं. कुछ ने केरल सरकार से अपने कर्जों को माफ किए जाने की अपील की है, ताकि वे युद्ध की स्थिति से गुजर रहे एक देश से वापस अपने घरों को सुरक्षित लौट सकें.

लेकिन सिंधु का कहना है कि वो सरकार से मदद की अपील भी नहीं कर सकतीं, क्योंकि उनके कर्जे दोस्तों से लिए गए थे जिनका कोई दस्तावेज नहीं है.

"अगर केरल सरकार कर्जों को माफ करने का फैसला कर भी ले तब भी मैं इसका फायदा उठाने की उम्मीद नहीं कर सकती. मैंने बैंक से कर्ज नहीं लिया है, इसलिए मैं सरकार को क्या दिखा पाऊंगी?" विदेशों में रहने वाले केरलवासियों के मामलों के मंत्री केसी जोसेफ कहते हैं कि अभी "हमारी प्राथमिकता समस्याग्रस्त जगहों पर से केरल के सभी लोगों की सुरक्षित वापसी है. इस मौके पर कर्ज अहम मुद्दा नहीं है." (बीबीसी, 20 जून, 2014, इमरान कुरैशी की रिपोर्टः http://www.bbc.com/news/world-asia-india-27917521- बीबीसी पर इस रिपोर्ट का हिंदी संस्करण यहां देखें –

(http://www.bbc.com/hindi/international/2014/06/140619_iraq_tikrit_indian_nusre_ml)

इसके बावजूद हम भूल गए हैं कि श्रम शक्ति के उत्पादन के इन नए क्षेत्रों को वैश्वीकरण के इस दौर के पहले चरण में ठीक उसी तरह जोर–जबरदस्ती भरे उपायों से सुरक्षित करना पड़ा था, जिस तरह उन्नीसवीं सदी में औपनिवेशिक आबादी को सैन्य बलों के साथ समुद्री सफर पर उन इलाकों में भेजा गया था जहां जल्दी ही बागान उद्योगों की शुरुआत होने वाली थी. कब्जे और उत्पादन के लिए क्षेत्रों को सुरक्षित करने का संयोग न तो तब कोई ईश्वरीय विधान था और न ही आज है. प्रेमांशु कुमार बंद्योपाध्याय ने भारत से दक्षिण पूर्वी एशिया में चलाए गए सैन्य अभियानों का जो ब्योरा सेपॉयज इन द ब्रिटिश ओवरसीज एक्पेडीशंस (2011) में दिया है वह इस प्रक्रिया के शुरुआती चरण पर रोशनी डालता है. भारत या अमेजन के अंदरूनी हिस्सों में या इंडोनेशिया के जंगलों में या मध्य पूर्व के रेगिस्तानों में इन अभियानों की गूंज आज भी सुनी जा सकती है.

असल में, मैं जिन दो युगों की बात कर रहा हूं, उनकी समानताओं को जरूरत से ज्यादा बढ़ा कर देखने की जरूरत नहीं है, इन समानताओं पर हमें हैरान भी नहीं होना है. औद्योगिक पूंजीवाद द्वारा श्रम की अपार आपूर्ति की जरूरत जहां वैश्वीकरण की शुरुआती अवधि की खासियत थी, वहीं वैश्वीकरण की मौजूदा अवधि की खासियत पूंजी और दूसरे संसाधनों (जिसमें जमीन भी शामिल है) का अभूतपूर्व वित्तीयकरण है जो श्रम की वैसी ही आपूर्ति की मांग करता है (ताकि जंगलों को साफ किया जा सके, नए शहरों का निर्माण किया जा सके, मनोरंजन उद्योग और देखभाल के उद्योग खड़े किए जा सकें, वगैरह वगैरह). यह अपार श्रम आज भी इस वहशी जानवर के पेट में समा रहा है. आज की ही तरह तब भी इस प्रक्रिया के पहले व्यापक पैमाने पर किसान बर्बाद हुए थे और उन्होंने खेती छोड़ दी थी. आज की ही तरह तब भी यह ताकत के व्यापक उपयोग के बूते आगे बढ़ा था.

बहरहाल, हमें सामूहिक रूप से आधुनिक पूंजीवाद में प्रवास, श्रम और पहचान के बोझ के चरणबद्ध विकास के ब्योरों (जीनियोलॉजिकल अकाउंट) पर काम करने की जरूरत है. यह कोई सीधा–सरल इतिहास नहीं होगा, क्योंकि इसमें राष्ट्रीय, लैंगिक, नस्लीय या दूसरे अन्य कारक एक बहुत बड़े, विविधतापूर्ण श्रम बाजार के निर्माण में अपना योगदान करते हैं. इस प्रक्रिया में जन्मे व्यक्तिपरक अनुभवों (सब्जेक्टिविटी) ने हमारे समय के विवादित इतिहास में अपना योगदान दिया है.

("रिटर्निंग टू द हिस्ट्रीज ऑफ इमीग्रेशन इन द लेट नाइनटीथ एंड अर्ली ट्वेंटीथ सेंचुरी" नाम के एक व्याख्यान का संशोधित पाठ जिसे टाटा इंस्टिट्युट ऑफ सोशल साइंसेज के पटना केन्द्र द्वारा आयोजित माइग्रेशन (आप्रवासन) व्याख्यान माला के तहत 23 अगस्त 2016 को पढ़ा गया. मूल व्याख्यान इंडिया–चाइना इंस्टीट्यूट, न्यू स्कूल ऑफ सोशल रिसर्च में दिसंबर 2013 में दिया गया था. मैं मार्क फ्रेजर, अशोक गुरुंग, विक्टोरिया हट्टम और पाउला बनर्जी का आभारी हूं).

उद्धृत स्रोत (ऑनलाइन स्रोतों को पाठ के साथ ही दे दिया गया है. आखिरी बार सभी लिंक्स की जांच 29 जून 2014 को की गई थी

अदोर्नो थियोजोर, नेगेटिव डायलेक्टिक्स, अनु. ई.बी.एश्टन (लंदनः रूतलेज, 2004)

अंब्रोज स्टीफन ई., नथिंग लाइक इट इन द वर्ल्डः द मेन हू बिल्ट द ट्रांसकन्टीनेंटल रेलरोड 1863–1869 (न्यूयॉर्कः साइमन एंड शुसर, 2001)

बंद्योपाध्याय प्रेमांशु कुमार, सेपॉयज इन द ब्रिटिश ओवरसीज एक्सपीडिशंस, वॉल्युम 1 (1762–1826) (कोलकाताः के.पी. बागची, 2011)

बहल राना पी. और मार्सेल वान डर लिंडन (संपा.), कुलीज, कैपिटल, एंड कॉलोनियलिज्म – स्टडीज इन इंडियन लेबर हिस्ट्री (कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2007)

ब्रेमन यान, टेमिंग द कुली बीस्ट – प्लांटेशन सोसायटी एंड द कोलोनियल ऑर्डर इन साउथईस्ट एशिया (दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1989)

कास्ल्स स्टीफंस और कॉजैक गोड्युला, इमीग्रेंट वर्कर्स एंड क्लास स्ट्रक्चर इन वेस्टर्न यूरोप (लंदनः इंस्टीट्यूट ऑफ रेस रिलेशंस, 1973)

कोल रॉबर्ट एंड सीनेटर मार्क हैटफील्ड, अपरूटेड चिल्ड्रेन – अर्ली लाइफ ऑफ माइग्रेंट फार्म वर्कर्स (यूनिवर्सिटी ऑफ पीट्सबर्ग प्रेस, 1971)

डेविस माइक, एल नीनो फेमिन्सः लेट विक्टोरियन होलोकॉस्ट्स एंड द मेकिंग ऑफ द थर्ड वर्ल्ड (लंदनः वर्सो, 2002)

डीपीई (डिपार्टमेंट ऑफ प्रोफेशनल एंप्लॉइज, ए.एफ.एल.–सी.आइ.ओ.) फैक्टशीट, 2012; डीपीई शोध प्रशिक्षु चार्ली फैनिंग द्वारा अपडेटेड (मिमिओ)

गेयर, मेरी (संपा.), बिहाइंड द वॉल – द वुमेन ऑफ द डेस्टीट्यूट असाइलम, एडेलेड 1852–1918, वुमेन्स सफ्रेज सेंटेनरी इन साउथ एशिया 1894–1994 के मौके पर प्रकाशित (एडेलेडः माइग्रेशन म्यूजियम, 1994)

हावर्ड डेविड, एंपायर एक्सप्रेसः बिल्डिंग द फर्स्ट ट्रांस्नेशनल रेलरोड (न्यूयॉर्कः पेंगुइन बुक्स, 2000)

ह्वेनसन केविन और केन यंग (संपा.), ट्रांस्नेशनल माइग्रेशन एंड वर्क इन एशिया (लंदनः रूतलेज, 2006)

लुई, मेरी डिउहर्स्ट, द बाउंड्रीज ऑफ द रिपब्लिकः माइग्रेन्ट राइट्स ऐंड द लिमिट्स ऑफ यूनिवर्सलिज्म इन फ्रांस, 1918.1940 (स्टैनफोर्डः स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2007)

लॉयड मार्टिन, द पासपोर्टः द हिस्ट्री ऑफ मैन्स मोस्ट ट्रैवल्ड डॉक्युमेंट (ग्लूस्टरशायरः शटन पब्लिशिंग, 2003)

मार्शल टी.एच., मेस्सार्दा सांद्रो और ब्रेट नेसन, बॉर्डर एज मेथड, ऑर, द मल्टीप्लीकेशन ऑफ लेबर (डर्हम, एनसीः ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस, 2013)

पार्कर रॉय, अपरूटेडः द शिपमेंट ऑफ पुअर चिल्ड्रेन टू कनाडा, 1867 टू 1917 (ब्रिस्टलः द पॉलिटी प्रेस, 2010)

रोजेनबर्ग क्लिफर्ड, पोलिसिंग पेरिस – द ऑरिजिन्स ऑफ मॉडर्न इमीग्रेशन कंट्रोल बिटवीन द वार्स (इथाका, कॉरनेलः कॉरनेल यूनिवर्सिटी प्रेस, 2006)

समाद्दार रणबीर, द मार्जिनल नेशनः ट्रांस्बॉर्डर माइग्रेशन फ्रॉम बांग्लादेश टू वेस्ट बंगाल (नई दिल्लीः सेज, 1999)

द इकोनॉमिस्ट, "ब्रीफिंग प्रॉस्टीट्युशन एंड द इंटरनेटः मोर बैंग फॉर योर बक", 9 अगस्त 2014, पृ. 15–18

द स्टेट ऑफ द वर्ल्ड्स मिडवाइफरी, 2011ः डेलिवरिंग हेल्थ, सेविंग लाइव्स, यूनाइटेड नेशन्स पॉपुलेशन फंड, न्यूयॉर्क, 2011

टिली चार्ल्स, "ट्रांस्प्लांटेड नेटवर्क्स", वर्जिनिया यान्स–मक्लॉघलिन द्वारा सम्पादित ''इमिग्रेशन रिकन्सिडर्डः हिस्ट्री, सोशियोलॉजी ऐंड पॉलिटिक्स'' से. (न्यूयार्कः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

टॉर्पी जॉन, द इन्वेंशन ऑफ पासपोर्टः सर्विलेंस, सिटीजनशिप, एंड द स्टेट (कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999).

TISS

Tata Institute of Social Sciences
Patna Centre

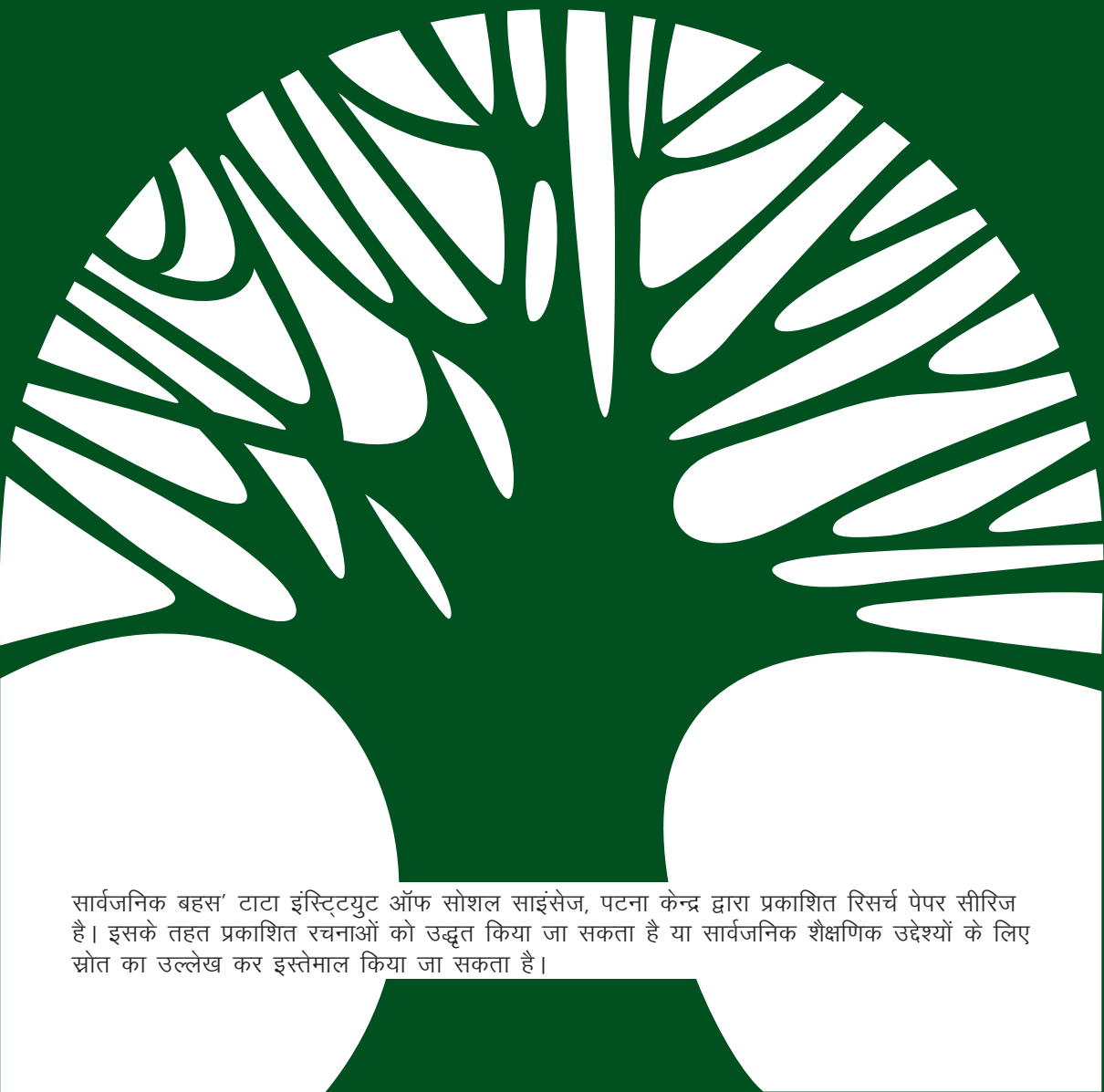

सार्वजनिक बहस' टाटा इंस्टि्टयुट ऑफ सोशल साइंसेज, पटना केन्द्र द्वारा प्रकाशित रिसर्च पेपर सीरिज है। इसके तहत प्रकाशित रचनाओं को उद्धृत किया जा सकता है या सार्वजनिक शैक्षणिक उद्देश्यों के लिए स्रोत का उल्लेख कर इस्तेमाल किया जा सकता है।